संस्थापित १८६७ ई.

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ १०००
वार्षिक शुल्क ₹ १००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ २.००

● वर्ष : १२० ● अंक : ३७ ● १५ सितम्बर, २०१५ भद्रपद शुक्ल द्वितीया सम्वत् २०७२ ● दयानन्दाब्द १६१ वेद व मानव सृष्टि सम्वत् : १६६०८५३११६

योगेश्वर भगवान् कृष्ण का उज्ज्वल चरित्र हम सभी अपने जीवन में धारण करें

देवेन्द्रपाल वर्मा, सभा प्रधान

आर्य समाज (वेद मंदिर) गोविन्द नगर, कानपुर में दिनांक ६.६.१५ को श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर्व पर आयोजित कार्यक्रम में आर्य प्रतिनिधि सभा, उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्र पाल वर्मा ने मुख्य अतिथि के रूप में भाग लिया। सभा स्थल पर पहुंचते ही समाज प्रधान श्री राजधीर सिंह आर्य मंत्री श्री जयदेव सिंह आर्य श्री श्याम प्रकाश शास्त्री अन्तरंग सदस्य आर्य प्रतिनिधि सभा, उ.प्र. एवं अमित कपूर आर्य समाज शिव कटरा सहित कानपुर नगर की आर्य समाजों के पदाधिकारियों ने माल्यार्पण कर उनका भव्य स्वागत किया।

सभा को सम्बोधित करते हुए सभा प्रधान जी ने योगेश्वर भगवान् कृष्ण के उदात्त जीवन पर प्रकाश डालते हुये कहा कि- द्वापर के अन्तिम चरण में देश के रजवाड़े आपस में सत्ता के लिए लड़ने लगे। श्री कृष्ण के मामा कंस ने आसुरी प्रवृत्ति के वशीभूत होकर राज्य में आतंक फैलाना प्रारम्भ किया- किंवदन्ती है कि कंस की इसी आसुरी प्रवृत्ति के कारण उसे आकाशवाणी सुनाई दी कि तुम्हारा भांजा ही तुम्हें मारकर राज्य को सुरक्षित करेगा- कंस ने अपनी बहन देवकी व बहनोई वसुदेव को जेल में डाल दिया था कि जो भी बच्चा पैदा होगा उसे हम मार डालेंगे। परमात्मा की कृपा से जेल में ही कृष्ण का जन्म हुआ परंतु राज्य कर्मचारियों के सहयोग से (क्योंकि वे सभी कंस के आततायीपन से दुखी थे) वसुदेव ने कृष्ण को पैदा होते ही गोकुल यदुवंशी नन्द जी एवं माता यशोदा को ले जाकर पालन के लिए सौंप दिया। कृष्ण की परवरिश उन्होंने बड़ी ही सावधानी और श्रद्धा से की। जब कंस को कृष्ण के बचकर निकलजाने की सूचना मिली तब तक काफी देर हो चुकी थी, फिर भी उसने कृष्ण की हत्या के अनेको उपाय किए परंतु वह मारे न जा सके। विद्यार्जन के बाद वे समाज के कार्यो में लग गये। उनके जीवन के अनेक अद्वितीय उदाहरण हमें सुनने को मिलते हैं सहपाठी दरिद्र ब्राह्मण सुदामा का सखात्व, कंस को ललकार कर मार कर राज्य को आतंक मुक्त कराना आदि। परंतु विदेशियों ने उनके उज्ज्वल चरित्र को लांछित कराने की पुस्तकें तैयार करायी। उन्हें पूरी तरह से बदनाम करके उनके उज्ज्वल चरित्र पर धूल डालने की चेष्टा की।

योगेश्वर कृष्ण पाण्डवों और कौरवों में परिवार बनकर जीने की धृतराष्ट्र को सम्मति दी परंतु दुर्योधन सुई की नोक के बराबर भी जमीन पाण्डु पुत्रों को न देने की बात कहकर श्री कृष्ण की सम्मति को अस्वीकार कर दिया तब श्री कृष्ण ने पाण्डवों को धर्म युद्ध की प्रेरणा दी। युद्ध क्षेत्र में अर्जुन को अपने परिजनों व गुरुओं के सामने लड़ने को खड़ा देखकर युद्ध करने से मना किया तो बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से अर्जुन ने धर्म युद्ध में लड़ने को तैयार किया। स्वयं अर्जुन के सारथी बनकर युद्ध का नेतृत्व किया। धर्म की विजय हुई पाण्डव जीते युधिष्ठिर को राज्य गद्दी पर बिठाकर स्वयं वहां से देश की सुरक्षा की दृष्टि से द्वारिकापुरी में अपना निवास बनाया। उनकी राजनीतिक दूर दृष्टि ने दक्षिण से युद्ध लोलुप विदेशियों के अन्दर घुसने की प्रबल संभावना देखी थी। जो सिन्धु नदी की ओर से यवनों के आक्रमण से सिद्ध हुयी।

देश में वैदिक संस्कृति उत्तरोत्तर क्षीण हो रही थी। हम पराधीन हो गये। हमारा अस्तित्व नष्टप्रायः हो गया। पराधीनता काल में महर्षि दयानन्द का उदय हुआ। उन्होंने इसके लिए वेद पथ से विमुखता को ही पाया फिर उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में बुलन्द आवाज वेद की ओर लौटने की लगायी। आर्य समाज की स्थापना आन्दोलन के रूप में की। आन्दोलन तेज हुआ बुराइयां छंटने लगी। नारी को उसका उचित स्थान मिला। स्वराज्य आन्दोलन चला देश स्वतंत्र हुआ। महर्षि दयानन्द ने भगवान कृष्ण को जन्म से मृत्युपर्यन्त पूर्ण आदर्श पुरूष घोषित किया। उन्होंने कहा कि उनका सम्पूर्ण जीवन निर्दोष था। जन जन में समत्व एकत्व भाव भरने के लिए वे सदा प्रस्तुत रहे। विदेशियों ने कृष्ण के उज्ज्वल चरित्र को कलंकित करने का कुचक्र रचा। योगेश्वर कृष्ण के छलिया, माखनचोर, गोपिकाओं से रास लीला करने वाला आदि अनेक लांछनों से उन्हें बदनाम किया। अंधश्रद्धालु जनता विवेक शून्य होकर आज उनके जन्म दिन पर उन लांछनों को गा गा कर कृष्ण भक्ति का ढोंग करती हैं।

प्रत्येक आर्य का धर्म है कि महर्षि दयानन्द द्वारा बताये गये योगेश्वर कृष्ण के चरित्र को स्वयं श्रद्धा से स्वीकार करें और उनके उज्ज्वल चरित्र को जन जन में फैलाने के लिए सभाओं, गोष्ठियों, लेखों और व्याख्यानों द्वारा समुद्यत हो जाये। हमारा प्रयास निष्फल नहीं होगा। सारा विश्व श्री कृष्ण के वास्तविक चरित्र को जान और समझ कर उससे अपने जीवन को उन्नत बनाने का संकल्प लेगा। अन्त में प्रधान जी ने इस आयोजन के लिए अधिकारियों का आभार व्यक्त करके भाषण को विराम दिया। ●●●

आर्य संस्कृति व सभ्यता की रक्षा के लिए वेदों का स्वाध्याय जरूरी

-देवेन्द्र पाल वर्मा

आर्य समाज शामली के वेद प्रचार कार्यक्रम में दिनांक ०४.०६.२०१५ को आर्य प्रतिनिधि सभा, उ. प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्र पाल वर्मा मुख्य अतिथि के रूप में पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही श्री राजपाल सिंह आर्य, प्रधान धर्मवीर वर्मा प्रधान आर्य विद्या सभा, रघुवीर सिंह आर्य, रामेश्वर दयाल आर्य, राम कुमार गुप्ता, दिनेश आर्य मंत्री श्रीमती मीरा वर्मा प्रधान स्त्री आर्य समाज आदि ने भव्य स्वागत किया।

श्रोताओं को सम्बोधित करते हुए प्रधान जी ने कहा कि आज वेद ज्ञान से दूर होने के कारण ही हम सभी बुराइयों से ग्रस्त हो रहे हैं। भारत की प्राचीन संस्कृति व सभ्यता तार तार हो रही है। भारत की संस्कृति व सभ्यता की रक्षार्थ ही महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की थी। उसे आन्दोलन नाम देकर देश को सभी बुराइयों से छुड़ाने के लिए हमें सजग करने का रास्ता दिया था। आज सारे देश में भौतिक समृद्धि का लुभावना स्वप्न हमें भटका रहा है। आर्य समाज आन्दोलन ही इस भटकाव से हमें बचा सकता है। हम सभी आर्य जन सजग हो सावधान हों हमारा बिना किसी स्वार्थ, बैर, विरोध के समर्पण भाव से संगठित प्रयास आर्य समाज आन्दोलन को तीव्र बनायेगा। जन जन आर्य बनेगा और भारतीय संस्कृति व सभ्यता की रक्षार्थ अपना सर्वस्य अर्पित करके उसकी रक्षा में समर्थ बनेगा। ●●●

बिना वैदिक शिक्षा के देश उन्नत नहीं हो सकता

-देवेन्द्र पाल वर्मा

आर्य समाज औरैया में वेद प्रचार कार्यक्रम में दिनांक ५.६.१५ को आर्य प्रतिनिधि सभा, उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्र पाल वर्मा पहुँचे, उन्होंने पहुँचते ही यज्ञ में भाग लेकर आहुतियां प्रदान की। यज्ञ के अनन्तर जन समूह को सम्बोधित करते हुए सभा प्रधान जी ने कहा कि भारत कभी विश्व गुरू था सारे विश्व से शिक्षा के लिए जिज्ञासु यहां आकर गुरूजनों के चरणों में बैठकर अपने को सुशिक्षित बनाते थे। महाभारत काल के बाद धीरे धीरे वेद ज्ञान का लोप होने लगा। पुराण आदि धर्मग्रंथ कहे जाने लगे, ढोंग, पाखण्ड बढ़ने लगा। देश पराधीन हो गया। विदेशियों ने हमारी शिक्षा व्यवस्था भी बदल डाली। महर्षि दयानन्द का उदय पराधीनता काल में हुआ। उन्होंने वेद ज्ञान के लोप को ही सारी बुराइयों का जनक कहा। उन्होंने वेद की ओर लौटो का नारा दिया। आर्य समाज की स्थापना की। प्राचीन वैदिक शिक्षा चलाने पर जोर दिया। स्वराज्य आन्दोलन चला देश स्वतंत्र हुआ। आज हम कहने को स्वतंत्र है परंतु वास्तव में विदेशी शिक्षा, संस्कृति के पूरी तरह गुलाम हो रहे हैं। बिना वैदिक शिक्षा के देश उन्नत नहीं हो सकता इसलिए हम सभी आर्यो को देशोत्थान का संकल्प लेकर वैदिक शिक्षा पद्धति के प्रसार के लिए सरकार पर दबाव बनाने के लिए-आर्य समाज आन्दोलन को तीव्र गति से चलाने का संकल्प लेना होगा। हमें घर घर संदेश पहुँचाना होगा। निश्चय ही हमारे इस संकल्प और प्रयास से सबमें परस्पर प्रेम उपजेगा। अत्याचार अनाचार का सर्वनाश होगा। देश समृद्ध होगा। विश्व में अपना उच्च स्थान बनायेगा।

सभा स्थल पर पहुँचते ही डा. सर्वेश आर्य मनीषी, वानप्रस्थी, आनन्द आर्य आदि ने प्रधान जी का माल्यार्पण कर स्वागत किया। शांति पाठ के बाद कार्यक्रम समाप्त हुआ। ●●●

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

स्वामी धर्मेश्वरानन्द सरस्वती
मंत्री/प्रधान सम्पादक

आचार्य वेदव्रत अवस्थी
सम्पादक

सम्पादकीय.....

हम सच्चे आर्य बनकर महर्षि दयानन्द के स्वप्न साकार करें

आज हमारा देश सभी बुराइयों से ग्रस्त हो रहा है, युवा पीढ़ी का चरित्र ह्रास हो रहा है। नारी उपेक्षित व प्रताड़ित हो रही है। उनका यौन शोषण सामान्य सी घटना बन रहा है। जाति भेद चरम पर है जाति भेद फैला कर सभी राजनीतिक दल अपना अपना वोट बैंक बनाने में लगे हैं। शिक्षा मंदिर धन कमाने के केन्द्र बन रहे हैं शिक्षा गौण हो रही है। ढोंग पाखण्ड धर्म के नाम पर फैलाया जा रहा है।

महर्षि दयानन्द जब कार्य क्षेत्र में आये थे तो हम पूरी तरह से पराधीन थे। अंग्रेज हमारे राजा बन कर हमारा शोषण कर रहे थे। मातृशक्ति का अस्तित्व विनष्ट कर दिया गया था। बड़ी ही चालाकी से उन्होंने हमारी शिक्षा बदल डाली जिसके द्वारा हम रोजी रोटी तक सीमित रहें व राष्ट्रोत्थान की भावना उपज ही न सके। उन्होंने अपनी शिक्षा के द्वारा आर्यो को विदेशी और आदिवासियों का यहां का-कहकर हममें जो सब देशवासी आर्य थे उनमें भेद पैदा कराकर आपस में लड़ा दिया। तथाकथित धर्मगुरूओं ने ईश्वरीय वाणी वेद को भुलाकर पुराणों और तंत्र ग्रंथों को हमारा धर्मग्रंथ कहना प्रारम्भ किया। मूर्ति पूजा को भगवान की पूजा कहकर अपना धन कमाने का स्रोत बना लिया। हम स्वयं कुछ नहीं करते ईश्वर ही जो चाहता है वह हमसे कराता है कहकर हमें अकर्मण्य व धर्मभीरू बना दिया था। महर्षि ने कार्यक्षेत्र में आकर सर्वप्रथम देश की पराधीनता के मूल को पहचाना। मातृशक्ति का शोषण, जाति पांति का भेद तरह तरह के भगवानों की पूजा का प्रचलन और वेद ज्ञान से रहित जीवन दर्शन को पाया फिर इसके विरूद्ध आवाज उठायी। नारी को मातृशक्ति घोषित करके उसके सम्मान को बढ़ाया। वेद के पढ़ने का अधिकार सम्पूर्ण मानव जाति को दिलाया। जनता में जागृति आने लगी। सदैव सुखी सम्पन्न मानव जाति को रखने की भावना से आर्य समाज की स्थापना की- स्पष्ट घोषणा की कि यह कोई नया मत या सम्प्रदाय नहीं। ब्रह्मा से जैमिनी पर्यन्त प्रतिपादित सत्य सनातन वैदिक धर्म के संस्थापन का एक आन्दोलन है। जन जन में जागृति आयी सच्चे ईश्वर की पहचान लोग करने लगे। धन लोभी तथा कथित धर्मगुरूओं में इससे बेचैनी होने लगी और महर्षि के विरूद्ध अनैतिक आरोप ''यह नास्तिक है, यह ईसाइयों का एजेंट है'' आदि कहकर जनता को बरगलाने लगे परंतु जनता को वह पूरी तरह से बरगला न सके। आन्दोलन तेजी से बढ़ता रहा, ढोंग पाखण्ड मिटने लगे। शिक्षा व्यवस्था दुरस्त करने के लिए गुरूकुल विद्यालय खुलने लगे। स्वराज्य आन्दोलन चला जिसमें गुरूकुल के स्नातक स्नातिकाओं सहित आर्य नर नारियों ने समर्पण भाव से भाग लिया। स्वराज्य आन्दोलन सफल हुआ। हम स्वतंत्र हुये। हमारी अपनी सरकार बनी। सत्तासीन नेताओं ने देश की भौतिक समृद्धि पर ध्यान केन्द्रित कर लिया परन्तु शिक्षा व्यवस्था नहीं बदली। आर्य समाज ने तो यह समझा कि अब अपनी सरकार है सब ठीक होगा आन्दोलन में शिथिलता सी आने लगी हम हवन उपदेश करने तक सीमित होने लगे। फलतः युवा पीढ़ी में चरित्र का ह्रास होने लगा। आज हमारे देश में सभी बुराइयां सर उठाकर चल रही है। महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना कर उसके दायित्व के निर्वहन का अधिकारी हमें बनाया था। हम सजग और सचेत होकर अपने दायित्व को सम्हालें। युवा पीढ़ी को उत्तम नागरिक बनाने के लिए अपने विद्यालयों में नैतिक शिक्षा के पाठ को अनिवार्य रूप से चलाकर छात्रों में नैतिक गुणों की स्थापना करें। सामाजिक क्षेत्र में सभी बुराइयों के विरूद्ध सशक्त आवाज उठाकर उन्हें दूर करने में प्रवृत्त हों। हमारे पूर्वजों ने आर्य समाज आन्दोलन को गतिशील रखने के लिए इकाई आर्य समाज के बाद जिला स्तर पर संगठन को दृढ़ बनाने के लिए जिला सभायें, प्रदेशीय स्तर पर संगठन को और सुदृढ़ रखने के लिए प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभाएं और सार्वदेशिक स्तर पर आर्य समाज की सुदृढ़ता के लिए सार्वदेशिक सभा का निर्माण किया था। हम अपने अपने स्तर से इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपस के स्वार्थगत मनोमालिन्य को मिटाकर सच्चे आर्य बनें। सच्चे आर्य बनकर संगठन को मजबूत करें। महर्षि दयानन्द के स्वप्न को साकार करने का संकल्प लें। हमारा संकल्प हमें सफलता देगा। हमारा प्रदेश सभी अवगुणों से मुक्त आर्य संस्कृति का संवाहक बनेगा।

-सम्पादक

योग द्वारा ही वर्तमान समस्याओं का समाधान संभव है

-डा. रघुवीर वेदालंकार

योग एक मानस शास्त्र है जिसमें मन को संयत करना और पाशविक वृत्तियों को हटाना सिखाया जाता है। वर्तमान समस्याओं के सर्वागीण विकास के लिए योग बहुत उपयोगी है, मानव जीवन के लिए आवश्यक शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक विकास में यह विद्या सफलता दिलाती है।

वर्तमान समय में योग का पर्याप्त प्रचार हो रहा है, किंतु यह प्रचार के वल दो रूपों में दृष्टिगोचर हो रहा है या तो ध्यान, जिसे आज के प्रगतिशील समाज में मेडिटेशन नाम दिया गया है के नाम पर कुछ देर आंखे बंद करके बैठ जाते हैं या योगा के नाम पर विविध प्रकार के आसन करके संतुष्ट हो लिया जाता है कि हम योग कर रहे हैं। शहरी जीवन में आपको इन दोनों क्रियाओं के करने वाले ऐसे अनेक सज्जन मिल जायेंगे जो गर्व से कहते मिलेंगे कि मैं योगा की क्लास में गया था या प्रातः काल नियमित योग करता हूँ। इसी प्रकार मेडीटेशन के द्वारा संतुष्ट हो जाने वाले अनेक जन भी अपने को योगाभ्यासी करने का भ्रम पाल लेते हैं।

ये दोनों ही क्रियायें योग नहीं है। यह भी कह सकते हैं कि पातंजल योग दर्शन से इनका संबंध नहीं है। जहां तक मेडीटेशन का प्रश्न है वह स्वल्पांश में योग की धारणा का स्वरूप तो है तथापि विशुद्ध रूप में धारणा भी नहीं है, अपितु विचारों का केन्द्रीयकरण है। ऐसा केन्द्रीकरण तो गंभीर कार्य करते हुए सभी को करना पड़ता है। गाड़ी चलाते हुए ड्राइवर, आप्रेशन करते हुए डाक्टर, शोध करते हुए वैज्ञानिक, अध्यापन करते हुए अध्यापक इत्यादि अनेक व्यक्ति पूर्ण दत्तचित्त होकर ही अपने कार्य को करते हैं। दो बांसों के बीच में बंधी हुई रस्सी पर चलने वाला नट, तीव्र गति से मौत के कुंए में मोटर साइकिल चलाने वाला व्यक्ति तो इनसे भी अधिक ध्यानामग्न होकर अपना कार्य करते हैं तथापि उन्हें कोई योगी नहीं कहता क्योंकि उनका ध्यान योग से संबंधित नही अपितु अपने कार्य से संबंधित है। पातंजल ने तो योग की सुस्पष्ट परिभाषा दे दी है-

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः- सभी प्रकार की चितवृत्तियों का निरोध ही योग है। यहां यह समझ लेना बहुत आवश्यक है कि पतंजलि का यह चित्तवृत्ति निरोध किसी समय विशेष के लिए नहीं है अपितु २४ घंटे जीने वाले जीवन के लिए है। इस पर बाद में विचार करेंगे पहले आसनों के विषय में भी कुछ कहना अनिवार्य है। आजकल योग, योगा के नाम जिन आसनों की क्लास लगायी जाती है, वह परम उपयोगी है। लेख का उनसे कोई विरोध नहीं किंतु आसन शारीरिक स्वास्थ्य तथा रोगमुक्ति तक ही सीमित है। यह भी बहुत बड़ी उपलब्धि है। वर्तमान समय में अनियंत्रित भोग विलास में लिप्त होने वाले, अनाप शनाप खाने वाले जन नाना रोगों से ग्रस्त रहते हैं, ये रोग ऐसे दुःसाध्य भी होते हैं जिन्हें डॉक्टर/अस्पताल भी ठीक नहीं कर पाते। योगासनों के द्वारा अनेक व्यक्ति रोगमुक्त होते देखे गये है। यह योगासनों की बहुत बड़ी उपलब्धि है, तथा यह जन साधारण को अपनाना चाहिए। उसके लिए यही सब कुछ है। इसलिए वह इनसे आगे जाने का यत्न ही नहीं करता, न करें किंतु इन्हें योग मानने का भ्रम उसे नहीं पालना चाहिए। पातंजलि ने इस प्रकार के आसनों का विधान नहीं किया। उसके अनुसार तो आसन वहीं है जिसमें सुखपूर्वक लंबे समय तक धारणा, ध्यान में बैठा जा सके। क्या पातंजलि को अनेक प्रकार के आसनों का ज्ञान नहीं था। अवश्य होगा, किंतु वे उन्हें ध्यान में सहायक या आवश्यक नहीं मान रहे हैं। इसलिए योगदर्शन में उनको स्थान नहीं दिया गया। रही बात रोग मुक्ति की इसके लिए पातंजलि दूसरा उपाय सुझाते हैं - ईश्वरप्रणिधान। इनकी व्याख्या में व्यास जी लिखते हैं कि ईश्वर प्रणिधानी को व्याधि आदि दुख नहीं सताते। इसके साथ ही पतंजलि द्वारा प्रतिपादित यम-नियम-प्राणायाम-प्रत्याहार का पालन करने वाला साधक या तो रोगी होगा ही नहीं होगा भी तो बहुत कम। क्योंकि 'भोगे रोगभयम्' यह संसार भोगी है, तभी तो रोगो से ग्रस्त है। योगी रोगी होगा ही नहीं। इसीलिए पतंजलि को विस्तार से योगासनों के उल्लेख की आवश्यकता नहीं पड़ी।

योग इतना सस्ता नहीं जितना कि आज उसे बना दिया गया है। पतंजलि का योग एक समग्र जीवन पद्धति है। यह किसी एक भाग की साधना का नाम नहीं, अपितु योग के आठो अंगों की समग्र साधना का नाम है। इसलिए वह केवल किसी काल विशेष या स्थान विशेष में की जाने वाली क्रियाएं नहीं है, अपितु चौबीसों घंटे जीवन से संबंधित एक सुव्यवस्थित पद्धति है कि जिससे मानव जीवन पूर्णतः नियंत्रित एवं परिमार्जित हो जाता है।

योग के द्वारा न केवल व्यक्ति का, अपितु पूरे समाज एवं राष्ट्र का जीवन परिमार्जित हो सकता है, शुद्ध हो सकता है। योग से वर्तमान समस्याओं का समाधान कैसे संभव है, इस पर भी विचार करते हैं-

योग का प्रारम्भ आसनों अथवा ध्यान से नहीं होता, अपितु यम-नियमों से होता है लेखक की सुदृढ़ मान्यता है कि यम-नियमों का पालन किए बिना योग में प्रवेश हो ही नहीं सकता। पतंजलि द्वारा विहित यम-नियमों के प्रयोजनों को संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है-

क) दुष्कर्मो के निवाराणार्थ- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य इन चारों का यही प्रयोजन है।

ख) सांसारिक पदार्थो से विरक्ति - अपरिग्रह का फल

ग) चित के मलों का क्षालन - आंतरिक शौच तथा तप द्वारा

घ) एकाग्रता एवं समाधि में सहायक - आन्तरिक शौच तथा स्वाध्याय से चित्त की एकाग्रता प्राप्त होती है। इससे ही इन्द्रियों पर जय प्राप्त होती है जो कि योगी के लिए परमावश्यक है। इन्द्रियलोलुप व्यक्ति योग कर ही नहीं सकता।

ङ) ईश्वर प्रणिधान - समाधि की सिद्धि में साक्षात् कारण बनता है इस प्रकार सभी यम-नियम योगाभ्यासी के लिए आवश्यक है।

प्रश्न है योग से वर्तमान समस्याओं का समाधान कैसे होगा? होगा आज का मानव शीघ्रता से भोगवाद की ओर न केवल भाग रहा है, अपितु उसमें आकण्ठ धंसा हुआ है। आज का अध्यात्म भी भोगवाद में लिप्त है उससे अछूता नहीं है। उनके पास वे सभी साधन सभी सुख सुविधाएं विद्यमान है जो सभी सांसारिक व्यक्तियों को उपलब्ध भी नहीं है। धन एवं यश की तृष्णा उनके मन में गहराई तक छायी रहती है। जब संतों, महन्तों की यह दशा है तो सामान्य सांसारिक जनों की क्या स्थिति होगी? योग दर्शन इसी तृष्णा पर कुठाराघात करता है। वह उसे पूर्णतः नष्ट करता है। इसलिए पतंजलि ने 'संतोष' नामक एक नियम बताया तथा इसका फल भी बतला दिया- 'सन्तोषादनुत्तमं सुखलाभः।

शेष पेज ७ पर देखें....

धरोहर.....

सरलता सौम्यता विद्वत्ता सादगी की प्रतिमूर्ति साहित्य शिरोमणि आचार्य अनिल कुमार जी शास्त्री

स्वामी धर्मेश्वरानन्द सरस्वती
मंत्री, आर्य प्रतिनिधि सभा
उ.प्र., लखनऊ।

सौम्य आकृति, सरल सहज स्वभाव वाले इकहरा शरीर, धोती कुर्ता पहने हल्की सी दाढ़ी सभी को अपनी मधुर मुस्कान से प्रभावित करने वाले आचार्य अनिल कुमार जी की प्रतिभा अनायास आंखों के सामने आ जाती है। स्वप्न सा लगता है उनके जाने की बात को सुनकर, लेकिन वे गये नहीं है वे हमारे अन्तःकरण में स्मृतियों की धरोहर बनकर स्थापित हो गये हैं। महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास को प्रारम्भ करते समय लिखा है-

विद्याविलासमनसो धृतिशील शिक्षा,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः।।

इसी श्रृंखला में आचार्य श्री अनिल कुमार जी का नाम सम्मान के साथ लिया जायेगा, उन्होंने कभी पढ़ने-पढ़ाने में आलस्य नहीं किया, कभी कभी प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक एक स्थान पर ही बैठे बैठे पढ़ाते रहे। ऐसे विद्याविलासी आचार्य जी का जन्म इटावा जनपद में जसवन्तनगर के निकट सिरहौल ग्राम में श्रीमती गौरी देवी एवं पिता श्री शिवप्रताप सिंह आर्य के यहां हुआ था। आप ३ भाई एवं ४ बहनों में सबसे बड़े थे। आपके पिता श्री शिवप्रताप सिंह आर्य समाज के कर्मठ अधिकारी रहे। निकट में ही गुरूकुल सिरसागंज के आप मंत्री थे। उन्हीं दिनों आपका प्रवेश गुरूकुल में महात्मा देव स्वामी जी आचार्य के सानिध्य में कराया। उसके बाद परिवार के एवं परिचित भी कई छात्र पढ़ाये जो बाद में विद्वान बनकर संस्कृत जगत् की सेवा कर रहे हैं। आचार्य धनश्याम जी, आचार्य धर्मेन्द जी, आचार्य कृष्णगोपाल जी, आचार्य विनोद कुमार जी के नाम मुख्य है। आपकी बहनें भी कन्या गुरूकुल लोवाकलां में पढ़ी और विदुषी बनकर परम्परा को जीवित किया।

आपकी विद्या गुरूकुल सिरसागंज में हुई उस कार्यकाल में आप हिन्दी सत्याग्रह आन्दोलन में जेल में भी रहे। उसी समय कुछ दिनों तक गुरूकुल गौतमनगर नई दिल्ली में भी पढ़ने का सौभाग्य मिला है। आप पढ़ने के साथ-साथ स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देते थे। आर्य वीर दल उ.प्र. के शिविरों में आप उत्साह पूर्वक जाते थे। आपको गीत और श्लोक बनाने की रूचि भी बहुत थी। आपने शिक्षा पूरी करने पर पढ़ाने को ही महत्व दिया और सर्वप्रथम गुरूकुल महाविद्यालय ततारपुर में वर्ष १९६९ में साहित्य शिक्षक के रूप में आये। आपके पढ़ाने का तरीका बड़ा सरल व बड़ा मधुर था। लगभग एक वर्ष बाद आपको अन्यत्र जाना पड़ा और आप गुरूकुल सिरसागंज में साहित्य विभाग में नियुक्त हो गये। वहां पर भी मुझे शास्त्री कक्षा में साहित्य पढ़ाने का सौभाग्य मिला फिर आप गुरूकुल बरनावा में प्रधानाचार्य बने। गुरूकुल गदपुरी में भी प्रधानाचार्य रहे। गंगानगर राजस्थान में भी दो वर्ष तक अध्यापन किया। वर्ष १९८०-८१ में मैं आपको घर से लेकर गुरूकुल ततारपुर आया। जब आपसे निवेदन किया कि आप साहित्य विभागाध्यक्ष पद को सुशोभित करें तो एक बार मना कर दिया बोले- आप प्रधानाचार्य और मैं विभागाध्यक्ष? मैंने आपको पढ़ाया है यह तो मेरा अपमान है'' तो मैंने कहा कि - आपने ही तो बताया था कि ''पुत्रात् शिष्यादिच्छेत् पराजयम्'' पुत्र एवं शिष्य से पराजय की सदैव इच्छा करनी चाहिए। आपके लिए तो प्रसन्नता की बात है आपके पिता श्री ने भी समर्थन किया तब मैने कहा था कि आचार्य जी मैं कभी आपको यह अनुभव नहीं होने दूंगा कि मैं प्रधानाचार्य हूं और आपका स्तर कम हैं, मैं सदैव आपका सम्मान करूँगा और उनके जीवन के अंतिम क्षणों तक उसे निभाया है। ये सरल उदारमना सौम्य प्रकृति एवं स्वाभिमान के व्यक्तित्व के धनी थे। आप सदैव ब्रह्मचारियों के निर्माण का ध्यान रखते थे। आसपास के ग्रामों में कोई संस्कार अथवा वेद प्रचार की बात आती थी तो आपको सम्मान के साथ लोगो को बुलाने में प्रसन्नता होती थी। आप कई ग्रामों में अन्न संग्रह हेतु भी जाते रहे हैं, गुरूकुल के लिए अन्नसंग्रह हेतु धनौरा, मुरादपुर, काठीखेड़ा, महमूदपुर, मतनौरा आदि ग्रामों में प्रायः ही आपको बुलाया जाता था। आपके प्रवचन बड़े सरल सुधारात्मक होते थे। आप यज्ञों की व्याख्या ''सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय'' के रूप में करते थे। कभी कभी व्यंग्यात्मक शब्दों का, कभी द्वयर्थक शब्दों का प्रयोग करके मनोविनोद एवं ज्ञानवर्धन किया करते थे। श्लोक बनाना, गीत बनाना आपका मानों व्यसन ही था- ''जी रहे है लोग कैसे आज के वातावरण में'' यह कविता आपने अपने तरीके से लिखकर देश की दुर्दशा का पूरा चित्रण किया है। ''सुखी वसेदखिलं जगत् त्रस्तः कोऽपि न स्यात्'' यह काव्यानुवाद संस्कृत गीतिका के रूप में आपकी चिरस्मृति बन गई हैं। आपके भाव देशभक्ति एवं भारतीय संस्कृति से ओत प्रोत होते थे, एक बार गुरूकुल पाणिनि विद्यालय बहालगढ़ के कार्यक्रम में सभाध्यक्ष बनाया गया, व्याकरण विषय पर गोष्ठी और अध्यक्ष बना दिये गये साहित्य के पुरोधा। अन्त में आपने अपनी बात प्रस्तुत करते हुए कहा कि व्याकरण में महर्षि पाणिनि ने वृद्धि और गुण की बात कही है लेकिन उससे भी महत्वपूर्ण उन्होंने चरित्र निर्माण पर बल दिया है, अपनी ओर से व्याख्यान करते हुए बोले कि- ''भाई वृद्धि हो सद्गुणों की, वृद्धि हो बुद्धि की, वृद्धि हो विद्या की, शक्ति अर्थात् बल की ये चाहते हैं महर्षि पाणिनि चेतावनी भी देते है कि न धातुलोप आर्द्धधातुके अरे भोले शिष्य! ये तभी आवेंगे जब चरित्र निर्माण करेगा, क्योंकि धातु (शक्ति, चरित्र) लोप होने पर न गुण होंगे और न वृद्धि होगी''। यह नई व्याख्या सुनकर सभी विद्वान एवं वैयाकरणी बोले कि हमें पढ़ते पढ़ाते जीवन निकल गया, कभी सोचा ही नहीं था यह भी अर्थ हो सकता है। एक दिन गुरूकुल ततारपुर में बैठे बैठे खिन्न थे बोले- ''इस गुरूकुल में सबसे ज्यादा बकवास एवं पक्षपात हो रहा है मुझे यह बिल्कुल सहन नहीं आप इस पर तुरन्त निर्णय लेवें अन्यथा यह गुरूकुल के हित में नहीं रहेगा आदि आदि, बहुत देर तक मुझे भी समझ में नहीं आया लेकिन जब संकेत किया तो मैं समझ गया और मैं हंसकर बोला - आचार्यप्रवर! अब यह बकवास और पक्षपात ज्यादा दिन नहीं चलेगा, इसे दो तीन दिनों में ही समाप्त कर देंगे। बोले- आप कैसे समाप्त करोगे? मैंने कहा-इस गूलर के वृक्ष को उपर से कटवा देते हैं ''न रहेगा बांस और न बजेगी बांसुरी'' बात यह थी कि उस वृक्ष पर बक (बगुलों) ने वास (निवास) बना लिया था उससे पक्ष (पंख) नीचे की ओर गिर रहे थे पात (गिरना) अतः बकवास - बगुलों का निवास पक्षपात- पंखों का गिरना अर्थ भी होता है। इस प्रकार उनकी अपनी कहने की कला थी। आपका स्वभाव ''वज्रादपि कठोराणि मृदूनिकुसुमादपि'' पत्थर से भी कठोर था फूलों से भी कोमल था। कभी कभी आपका उग्र स्वभाव समझने में बहुत देर लग जाती थी और कभी अपनी सहज मुस्कान से कठिन से कठिन परिस्थितयों का सामना कर देते थे। पूज्यपाद गुरूदेव-मुनीश्वरानन्द जी सरस्वती के चरणों में बैठकर कभी कभी शंका समाधान किया करते थे। गुरूकुल के सभी अधिकारियों के प्रति आप विशेष सम्मान करते थे। आचार्यो के हित में भी वे सदैव अध्यक्षता करके गुरूकुल के हित में उचित निर्णय देते थे एवं सदैव गुरूकुल का हित चिन्तन सोचते थे। आप लगभग १० वर्ष तक प्राचार्य पद पर और ८ वर्ष उपाचार्य पद पर रहे लेकिन स्वास्थ्य ठीक न रहने पर आप सभी पदों से मुक्त हो गये। आपका स्वास्थ्य बीच बीच में कई बार बिगड़ा फिर ठीक हुआ और इधर लगभग २ वर्ष से ज्यादा कमजोरी अनुभव करते रहे। आंतो में सूजन, अल्सर, पीलिया जैसी बीमारी प्रभावी होती गयी ओर मानसिक रूप से भी कमजोर हो गये। शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति में आत्मिक शक्ति के बल पर जीवित नहीं रहे अपितु अमर हो गये। आपके उद्देश्य और संदेश हमारे लिए धरोहर आपका चिन्तन हमारे लिए वरदान है, आपका अनुभव हमारे लिए दिशा निर्देश है, आपका एक एक क्षण संस्था और समाज का सम्बल बन गया। आप इतिहास बनकर आए इतिहास बनकर चले गये, जाते समय तक बुद्धि विवेक जागृत रहे, आपने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा कि - ''अब मैं जा रहा हूँ, गुरूजनों का सम्मान करना, जिस का भी ऋण हो उसे जरूर दे देना, अच्छाईयां ग्रहण करते रहना, बुराइयों से सदा बचना और अन्त में माता जी को याद करते हुए ''मां आपका बेटा आपसे पहले ही जा रहा है'' इन शब्दों के साथ ओ३म् की ध्वनि करते हुए अंतिम श्वांस ली। यही अंतिम शब्द अमरवाणी और संजीवनी का कार्य करेगा। गुरूकुल के सभी अधिकारी, आचार्य, कर्मचारी तथा बड़े बड़े ब्रह्मचारी आर्य समाज हापुड़ के अधिकारी सभी अंतिम दर्शन को घर पर पहुंचे और अंतिम विदाई दी, घर पर जाकर सभी क्षेत्रवासियों एवं विद्यार्थियों ने वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ अंतिम संस्कार किया। यशरूपी शरीर सदैव याद रहेगा। आप अपने पीछे १ पुत्र एवं ४ पुत्रियों से हरा भरा परिवार छोड़ कर गये हैं। गुरूकुल ततारपुर के इतिहास में आचार्य जी सदैव अमर रहेंगे। हम सभी कुलवासी अपनी श्रद्धांजलि सादर समर्पित करते हैं।

संचालक-गुरूकुल पूठ-
गढ़ मुक्तेश्वर
हापुड़
मो० ९८३७४०२१९२

आर्यो का तुष्टीकरण दयानन्द की हार

आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा

नर नारी दोनों का अनादि सृष्टि काल से धरती पर अस्तित्व है। ईश्वर ने दोनों के लिए प्रवाह रूप से समानता का अधिकार प्रदान किया है। ईश्वरीय ज्ञान वेद में पुमान् को ओजस्वान अथर्व ८/५/४ ओज वाला कहा है, तो वेद में स्त्री को भी ओजस्वती, यजु १०/३ ओज वाली कहा है। इसी प्रकार वेद में पुमान् को सहीयान् ऋ. १/६१/७ अत्यन्त बल वाला सम्राट ऋ.२/२८/६ शासक, सभासद अथर्व. २०/२१/३ सभाओं का अधिकारी आदि कहा है तो उसी प्रकार वेद में स्त्री को महीयसी अथर्व. १०/५/४३ अत्यन्त बलशाली, सम्राज्ञी ऋ.१/८५/६४ शासिका, सभासदा अथर्व. ८/८/६ सभाओं की अधिकारिणी आदि कहा है।

ईश्वरीय व्यवस्थानुसार जीवन के उपदेश निर्देशों में कहीं पर भी ऊँच नीच का भाव नहीं है, स्त्री पुमान् दोनों को समान रूप से अधिकारिक सामर्थ्य प्राप्त है। पर मध्यकाल में वेदज्ञान से शून्य अहंमन्य पुमान् समाज ने स्त्री जाति का अपने को शासक मान लिया और स्त्री समाज को शास्य समझ लिया। सम्पुष्टि में धर्मसिन्धु, निर्णयसिंधु सदृश ग्रंथों में नारी जाति के लिए अनेक व्यवस्थायें धर्मादेश लिख डाले। जिनके चलते स्त्रीशूद्रौ नाधीयतामिति श्रुतिः, ढोलगवारशूद्र पशु नारी ये सब ताडन के अधिकारी, द्वारं किमेकं नरकस्य नारी सदृश अनेक प्रवादवाक्य समाज में प्रचलित हो गये। जिन प्रवादों ने नारी जाति से समस्त धर्म, कर्म, विद्या, वेद, सभा आदि के अधिकार एवं मंत्र आदि के पढ़ने पढ़ाने के श्रेष्ठ कार्य छीन लिये।

२०वीं शताब्दी में स्त्री जाति के सम्मानकर्ता महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेद के माध्यम से यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः यजु. २६/२ अर्थात् परमपिता परमात्मा ने जनेभ्यः जन जन स्त्री पुमान् सभी के लिए समान रूप से कल्याणकारिणी वेद वाणी प्रदान की है, यह उद्घोष किया। अन्यच्च पुमान् के सदृश नारियों को अध्ययन, यज्ञ करने कराने एवं सभासद आदि बन सकती है आदि सप्रमाण कथन किया।

महर्षि की इस उद्घोषणा से एवं उनके प्रयत्न से नारी जाति को पठन पाठन आदि के अधिकार प्राप्त हुए। नारियां मंत्री, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री, राज्यपाल, राष्ट्रपति, आचार्या, प्राचार्या आदि पदों पर प्रतिष्ठित हुई।

पर खेदावह यह है कि इन पदों पर प्रतिष्ठित होने पर भी स्त्री जाति की वह स्थिति आज भी स्वीकार नहीं हो पाई है जिस स्थिति की महर्षि दयानन्द ने कल्पना की थी एवं प्रयत्न किया था। आज भी वेद विरूद्ध मत मतान्तरों की भीड़ को बढ़ाने वाले अनेकों जाति ब्राह्मण, साधु, संत, महात्मा जन है जो स्त्री जाति की न उन्नति चाहते हैं और न उच्च पदों पर देखना चाहते हैं। इतना ही नहीं वे कूपमण्डूक जन स्त्री जाति के समक्ष न मंत्र बोलना चाहते हैं न स्त्री जाति को बोलने का अवसर देना चाहते हैं एवं न स्त्री जाति को समक्ष बैठे देखना चाहते हैं, सामने से हटाने का निर्देश तक देते रहते हैं।

इन कुत्सित मानसिकता वालों में स्वामी नारायण के साधु भी अग्रसर है। इनकी बहुत बड़ी विडम्बना है कि ये साधु पुमानों की भांति स्त्री जाति को अपने धर्म में दीक्षित करते हैं अपने मत को बढ़ाने में उनका सहयोग लेते हैं। नारियां इनका सहयोग कर सके अतः वस्त्र भेजकर अपने रंग में रंगते हैं। सभी को विदित हो कि यह स्वामी नारायण मत वही मत है जिसकी उत्पत्ति एवं आडम्बर कार्यो की पोल महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में खोली है।

इस मत की यह भी विडम्बना है कि महर्षि दयानन्द के जीवन का अनुकरण करके अपने मत उद्भावक को महान बनाया हुआ है। वह महत्ता अक्षरधाम मंदिरों में दिखाई जा रही है।

इस मत का उद्भावक अयोध्या जनपद के ग्राम का सहजानन्द हुआ जिसे नारायण का अवतार एवं सिद्ध माना गया। इस मत का प्रचारक दादा खाचर भी बना। वर्तमान में इस मत के बड़ी संख्या में साधु संत हैं। इस मत के प्रचार प्रसार के साधन यत्र तत्र बने अक्षरधाम मंदिर है। विल्ली अक्षरधाम मंदिर के अध्यक्ष वर्तमान में भद्रेश साधु है।

ये भद्रेश साधु जहां कहीं भी जाते है, वहां स्त्री जाति को सामने बैठने से निषेध करते हैं। ऐसी ही एक घटना अभी १५/३/२०१५ को हुई। गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार परिसर के मध्य गुरूकुल के प्राच्यविद्या संकाय विभाग एवं महर्षि सांदीपनी राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन, म.प्र. के संयुक्त तत्वावधान में १३-१५ मार्च २०१५ तक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हुई। गोष्ठी का विषय था ज्ञान विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में वेदों की प्रासंगिकता। गोष्ठी के आयोजन के सचिव प्रो. दिनेश चन्द्र शास्त्री गुरूकुल कांगड़ी प्राच्यविद्या संकाय के संस्कृत विभागाध्यक्ष थे। उन्होंने आर्य जगत के विद्वानों को भी आमंत्रित किया, उनमें मुझे भी अति आग्रह से आमंत्रित किया। गोष्ठी का समापन १५/३/२०१५ को था। समापन समारोह में स्वामी सुमेघानन्द जी सांसद, मंत्री शशांक, गुरूकुल कांगड़ी के कुलपति महोदय, संकायाध्यक्ष प्रो. सोमदेव शतांशु, प्रो. रूपकिशोर शास्त्री, सचिव वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन के साथ स्वामी नारायण मत के साधु भद्रेश भी आमंत्रित थे।

घटना - १५/३/२०१५ को प्रातः प्रतिदिन की भांति नीचे तल पर गोष्ठी का अंतिम सत्र चल रहा था। जहां प्रो. सोमदेव शतांशु के समीप मैं भी बैठी थी। लगभग ११:३० बजे प्रो. दिनेश चन्द शास्त्री सत्र के मध्य आये , संयोजक से कुछ कहा, तब मेरे कान में कहा - बहन जी आपका सम्मान करना है आप ऊपर मुख्य आयोजन स्थल पर सामने की प्रथम पंक्ति में बैठना। नीचे सत्र समाप्ति के पश्चात जब मैं ऊपर समापन स्थल पर पहुँची जहां पूर्व से प्रथम पंक्ति में डा. धर्मवीर, डा. वेदपाल एवं हैदराबाद के वेदालंकार भाई बैठे थे। मैं उन वेदालंकार भ्राता जी के समीप प्रथम पंक्ति में बैठ गई। ततः डा. वेदकुमारी घई विश्वविद्यालय जम्मू भी मेरे साथ प्रथम पंक्ति में बैठ गई। प्रथम पंक्ति की बाई ओर पंक्ति में सुनीता जायसवाल एवं एक अन्य बहन बैठ गई, और भी जन सामने बैठ गये। अभी तक भद्रेश साधु एवं अन्य विशिष्ट जन समापन के कर्ता धर्ता कार्यस्थल पर पधारे नहीं थे। लगभग १२:१० बजे श्रीकान्त शास्त्री, पतंजलि योग पीठ इन युवक भाई ने पंक्ति के बाई ओर बैठी हुई दोनों बहिनों को पीछे बैठने का निर्देश दिया ओर वे पीछे चली भी गई। ततः वे मेरे समीप आये और कहा कि आप प्रो. सोमदेव शतांशु के पीछे बैठ जाइये, उस समय शतांशु जी चौथी पंक्ति में बैठे थे। मैंने उन भाई से प्रश्न किया, क्यों? उनका उत्तर था दिनेश चन्द शास्त्री ने कहा है। मैंने पुनः कहा यहां मुझे बिठाया ही उन्होंने है, जाकर उनसे पूछो? वे शास्त्री युवक गये, पुनः आये और कहा भद्रेश साधु का निर्देश है कि सामने कोई महिला नहीं होनी चाहिए अतः दिनेश चन्द्र जी ने पीछे बैठने को कहा है।

उनकी बात सुनकर मैंने कहा- यह आर्य समाज की संस्था है अब तो मैं और भी नहीं उठूँगी, वे कहने लगे- इन घई माताजी को भी तो पीछे कर रहे हैं। मैंने पुनः कहा यहां पीछे जाने का प्रश्न नहीं है, प्रश्न आर्य सिद्धान्त का है, मैं तो इस बात पर हंगामा करूँगी, मैं सरकारी रोटी नहीं खाती। इस आर्य परिसर में ऐसा क्यों होगा? इतने में आयोजन के सचिव प्रो. दिनेश चन्द शास्त्री एवं उज्जैन के सचिव प्रो. रूपकिशोर शास्त्री दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये, आप हमारी बहिन है, हमारी बात समझें, हम आपका सम्मान करेंगे, आदि आदि कथन किए और प्रो. रूपकिशोर शास्त्री जी ने मुझे और घई जी को सामने से उठाकर प्रथम पंक्ति की बांई ओर जहां से दो बहिने उठायी गयी थीं वहां पर बिठा दिया। मैंने उन्हें कहा मैं आपका सम्मान नहीं लूँगी।

इस वाद विवाद के कुछ काल पश्चात् समारोह के सभी विशिष्ट जन आ गये, भद्रेश साधु भी पहुँच गये। स्वागत में वेद पाठ हुआ, वेदपाठ दक्षिणात्य एक पं. भाई ने तथा श्रीमती जाह्न्वी पतंजलि योगपीठ ने किया। वेदपाठ के अनन्तर श्रीमती जाह्न्वी सामने से जाने लगीं तो पुनः प्रो. रूप किशोर जी ने इशारा किया कि इधर से न जाये, उधर से जायें।

अब भला विचारिये कि आर्य विद्वानों द्वारा की गई ये घटनायें क्या निर्देश कर रही हैं? इन घटनाओं से यही सुस्पष्ट हो रहा है कि आर्य विद्वान सरकारी पदों पर जाकर सब कुछ करते हुए भी जहां सिद्धान्त की बात आती है वहां वे तुष्टीकरण को महत्व देते हैं, सिद्धान्त को नहीं।

आर्य समाज अपने को स्त्री पुमान् दोनों को समान अधिकार देने का पक्षधर कहता है। पुनः भद्रेश साधु की आज्ञा को स्वीकार कर हम बहनों को सामने से उठने का क्यों निर्देश देने का साहस कर डाला? यदि कोई कहे कि विशिष्ट जनों को बिठाना था तो प्रथम पंक्ति में अनेक पुमान् भाई बैठे थे तो उन पुमान् भाईयों में से क्यों किसी को नहीं उठाया?

इन अभद्र घटनाओं में किसी भी हेतु का देना व्यर्थ होगा, क्योंकि आधे घण्टे पूर्व तो प्रो. दिनेश चन्द शास्त्री आयोजन सचिव मुझे आगे की पंक्ति में बैठने को कहते हैं, आधे घण्टे पश्चात् भद्रेश साधु के निर्देशानुसार पीछे बैठने को कहा जा रहा है। यह मात्र तुष्टीकरण के कारण ही तो किया गया।

स्त्रियों को पीछे बैठने की बात ४/६/२०१२ में महर्षि सान्दीपनी राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान द्वारा आयोजित द्वितीय विश्व वेद सम्मेलन कार्यक्रम में भी हुई थीं। यह घटना दूरभाष द्वारा एक भाई ने बताई। उस दिन मैं कार्यक्रम स्थल में नहीं थी।

ठीक है हम नारियां बालकों के सदृश वेदपाठ कर लेंगी पर तुष्टीकरण की नीति के चलते यदि नारियों को समान अधिकार नहीं होगा तो उस वेदपाठ का कोई मूल्य नहीं।

तुष्टीकरण के कारण नारियों को पीछे बैठने की यह जो घटना हुई उससे मैंने वहां निर्णय लिया कि मैं इनका सम्मान नहीं लूँगी, और मैं वहां से उठकर चली गयी। मैं अभी अपने निवास पर पहुँची भी नहीं थी तब तक अनेक दूरभाष आ पहुँचे क्या घटना हुई, क्या घटना हुई।

ऐसी घटना आर्य समाज के लिए अतिघातक है। आर्य समाज की छवि को धूमिल करने वाली है। तुष्टीकरण आर्यो के लिए अनुचित है।

जो धरती, बुद्धि, मति, शक्ति रूप स्त्रीत्व से विरत होकर कुछ कर ही नहीं सकते, ऐसे भद्रेश साधु सदृश जन स्त्रियों को पीछे बैठने का आदेश देते हैं और तुष्टीकरण करने वाले भी धरती, बुद्धि, मति, शक्तिरूप स्त्रीत्व के बिना कुछ भी करने में असमर्थ है, वे जन भी उनके आदेश का पालन करते हैं तो यह अत्यन्त दुखद है।

यहां मैं कहना चाहती हूँ कि यदि भद्रेश साधु स्त्रियों को पीछे बैठने का निर्देश दे सकते हैं तो आर्यजन भद्रेश साधु को यह क्यों नहीं समझा पाये कि आपकी मान्यता हमारे परिसर में नहीं चलेगी। हम अपने आमंत्रितों को पीछे नहीं कर सकते हैं? आर्यो तुष्टीकरण से बचें, अन्यथा महर्षि दयानन्द की यह बड़ी हार होगी।

प्राचार्या
पाणिनी कन्या महाविद्यालय
वाराणसी-१०

''त्रैतवाद ईश्वर जीव प्रकृति के उद्गाता महर्षि दयानन्द''

मनमोहन कुमार आर्य

महर्षि दयानन्द ने जब उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वैदिक धर्म का प्रचार आरम्भ किया तो उस समय त्रैतवाद की कहीं चर्चा नहीं होती थी। विद्वत जगत में आचार्य शंकर प्रोक्त अद्वैतवाद प्रतिष्ठित था जो केवल एक ईश्वर की ही सत्ता को मानता है, जीव व प्रकृति की पृथक व अनादि स्वतंत्र सत्ता को नहीं। उन दिनो भक्तिवाद का भी जोर था जिसके अनुसार पुराणों के आधार पर प्रचलित मान्यताओं के अनुरूप मंदिरों में जाकर भिन्न भिन्न देवी देवताओं की मूर्तियों के आगे वन्दन, सिर नवाना, पूजोपचार व व्रतोपवास आदि करने को ही जीवन का उद्देश्य और मनुष्य जन्म की सफलता माना जाता था। महर्षि दयानन्द ने वेद, वेदांग,उपांग, उपनिषद सहित समस्त उपलब्ध प्राचीन साहित्य का अध्ययन किया था जिससे वह जान सके कि ईश्वर का जीवात्मा और प्रकृति से पृथक स्वतंत्र अस्तित्व हैं। ईश्वर से अतिरिक्त जीव व प्रकृति पृथक हैं, यह ईश्वर के बनाये व उसके अंश आदि नहीं है। जीव अनादि व चेतन तत्व है जबकि प्रकृति अनादि व जड़ तत्व है और यह दोनों ही अनेक बातों में ईश्वर के वश व नियंत्रण में हैं। ईश्वर-जीव-प्रकृति की एक दूसरे से भिन्न पृथक व स्वतंत्र सत्ताओं को ही त्रैतवाद के नाम से जाना जाता है। महर्षि दयानन्द जी ने अपनी इन मान्यताओं को बिना किसी की चुनौती के स्वयं ही अपने ग्रंथों में प्रस्तुत किया है जिससे अद्वैतवाद खंडित हो जाता है और त्रैतवाद अखण्डित रहता है व सत्य सिद्ध होता है।

आइये ईश्वर-जीव- प्रकृति इन तत्वों पर आधारित त्रैतवाद सिद्धान्त के पोषक सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में वर्णित मंत्रों व इनके भाषार्थ में महर्षि दयानन्द द्वारा किए गये अर्थो को देख लेते हैं। पहले मंत्र 'इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव यदि वा दधे यदि वा न। यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद।।' का अर्थ करते हुए वह लिखते हैं कि हे मनुष्य! जिस से यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है जो धारण और प्रलयकर्ता है जो इस जगत का स्वामी है जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति स्थिति, प्रलय को प्राप्त होता है सो परमात्मा है। उस को तू (मनुष्य वा जीवात्मा) जान और दूसरे को सृष्टिकर्ता मत मान। हमारी टिप्पणी यहां महर्षि दयानन्द ईश्वर को सृष्टि का धारणकर्ता, प्रलयकर्ता, जगत का स्वामी और जगत में व्यापक सत्ता बता रहे हैं। वह यह भी बताते हैं कि यह विविध सृष्टि ईश्वर से प्रकाशित है। ईश्वर व प्रकृति से भिन्न जीवात्मा को यहां तू शब्द से वर्णित किया गया है और उसे ईश्वर को जानने व अन्य किसी सत्ता को ईश्वर के स्थान पर मानने का निषेध कर रहे हैं। यह मन्त्रार्थ ईश्वर-जीव-प्रकृति अर्थात् त्रैतवाद का बोधक हैं।

दूसरे मंत्र 'तम आसीत्तमसा गूळमगे ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्। तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्।। का अर्थ करते हुए वह कहते हैं कि यह सब जगत् सृष्टि से पहले अंधकार से आवृत्त, रात्रिरूप में जानने के अयोग्य, आकाशरूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सम्मुख एकदेशी आच्छादित था। पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारणरूप से कार्यरूप कर दिया। हमारी टिप्पणी-यहां परमेश्वर व प्रकृति, इन दो तत्वों का वर्णन कर प्रकृति तत्व को सृष्टि की रचना होने से पूर्व अंधकार से आवृत्त, रात्रि रूप, आकाश रूप, अस्तित्व न होने के कारण जानने के अयोग्य और ईश्वर के सम्मुख एकदेशी के समान एवं तुच्छ वर्णित किया है। तब यह समस्त प्रकृति ईश्वर से आच्छादित थी। यह भी बताया है कि ईश्वर ने अपनी सामर्थ्य से इस कारणरूप प्रकृति को कार्यरूप अर्थात् सूर्य, पृथ्वी, चन्द्र, ग्रहोपग्रह, नक्षत्र आदि रूप में बनाया है।

तीसरे ऋग्वेद १०/१२६/१ मंत्र 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं दयामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।' का अर्थ करते हुए महर्षि लिखते हैं कि हे मनुष्यों! जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थो का आधार और जो यह जगत् हुआ है और होगा उस का एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत् की उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान था और जिसने पृथ्वी से लेकर सूर्य पर्यन्त जगत् को उत्पन्न किया है उस परमात्म देव की प्रेम से भक्ति किया करें। हमारी टिप्पणी : यहां महर्षि ईश्वर को सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थो का आधार अर्थात् उत्पत्ति व धारणकर्ता, उत्पन्न व उत्पन्न होने वाले जगत् का स्वामी तथा जगत् की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान रहने वाला बता रहे हैं। उसी की प्रेमपूर्वक भक्ति करने का परामर्श भी उन्होंने दिया है। यहां भी ईश्वर (जगत् का अद्वितीय स्वामी), जीवात्मा (भक्तिकर्ता) और प्रकृति (सूर्यादि तेजस्वी पदार्थ) का प्रत्यक्ष वर्णन किया है।

इसके बाद महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेद के ३१/२ मंत्र 'पुरूष एवेदं सर्व यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।' प्रस्तुत कर उसका भावार्थ करते हुए लिखा है कि हे मनुष्यो! जो सब में पूर्ण पुरूष (ईश्वर)और जो नाश रहित कारण (प्रकृति) और जीव (जीवात्मा) का स्वामी जो पृथिव्यादि जड़ और जीव से अतिरिक्त है, वही पुरूष (ईश्वर) इस सब भूत, भविष्यत् और वर्तमानस्थ जगत् का बनाने वाला है। हमारी टिप्पणी : यहां यह भी स्पष्ट रूप से त्रैतवाद का वर्णन किया गया है।

स्वामी जी ने तैत्तिरीयोपनिषद के श्लोक 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म।।' को प्रस्तुत कर उसका भाषार्थ करते हुए लिखा है कि जिस परमात्मा की रचना से ये सब पृथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं जिस से जीते और जिस में प्रलय को प्राप्त होते हैं वह ब्रह्म है। उस के जानने की इच्छा करो। हमारी टिप्पणी : यहां पृथ्वी, सूर्य आदि को ईश्वर की रचना बताया गया है। वही ईश्वर पृथ्वी पर जीवन का आधार है और वही जड़ जगत की प्रलय करता है। उस ब्रह्म को जानने की जीव को इच्छा करनी चाहिए। यहां भी त्रैतवाद का ब्रह्म, पृथ्यिादि और जीवन के द्वारा स्पष्ट उल्लेख हैं।

स्वामी जी ने त्रैतवाद को विस्तार से आगे भी समझाया है। 'जन्माद्यस्य यतः' इस शारीरक सू.१/२ का अर्थ करते हुए लिखा है कि जिस से इस जगत् का जन्म, स्थिति और प्रलय होता है वही ब्रह्म जानने योग्य है। इसके आगे कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर है।

प्रश्न - यह जगत परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है या अन्य से?
उत्तर- निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है परंतु इसका उपादान करण प्रकृति है।
प्रश्न- क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की?
उत्तर- नहीं, वह अनादि है।
प्रश्न- अनादि किसको कहते है और कितने पदार्थ अनादि हैं?
उत्तर- ईश्वर, जीव और जगत का कारण ये तीन अनादि है।
प्रश्न- इसमें क्या प्रमाण है?
उत्तर- द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति। ऋग्वेद १/१६४/२० एवं 'शाश्वतीभ्यः समाभ्यः।। यजु. ४०/८। इनके भाषार्थ मनमोहन कुमार आर्य महत्वपूर्ण है अतः प्रस्तुत हैं। (द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश (सयुजा) व्याप्त व्यापक भाव से संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं और (समागम) वैसा ही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर, प्रलय में छिन्न भिन्न हो जाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि है (तयोरन्यः) इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसार में पाप पुण्य रूप फलों को (स्वाद्वत्ति) अच्छे प्रकार भोक्ता है और दूसरा परमात्मा कर्मो के फलों को (अनश्नन्) न भोक्ता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप तीनों अनादि हैं। इस वेद मंत्र में तो ईश्वर ने स्पष्ट रूप से त्रैतवाद का विधान किया है। इसके विपरीत अन्य कोई वाद सत्य हो ही नहीं सकता। यहां महर्षि दयानन्द ने जीव व ईश्वर को व्याप्य व्यापक लिखा है। व्यापक का अर्थ है सर्वत्र, सब पदार्थो के भीतर व बाहर विद्यमान है और व्याप्य का जिसके अन्दर व बाहर व्यापक तत्व अर्थात् ईश्वर है। हमें लगता है इस ''व्याप्य-व्यापक सिद्धान्त'' का प्रतिपादन पहली बार शायद महर्षि दयानन्द ही कर रहे हैं। इनसे पूर्व किसी आचार्य द्वारा इन शब्दों का इस रूप में प्रयोग नहीं किया हैं। यदि यह सिद्धान्त स्वामी शंकराचार्य जी के समय में विदित व प्रचलित होता तो हो सकता है कि वह इसका खण्डन न कर पाते। (शाश्वती) इस मंत्र सूक्ति में महर्षि कहते हैं कि अपनी अनादि सनातन जीवरूप प्रजा के लिए वेद द्वारा परमात्मा ने सब विद्याओं का बोध किया है।

त्रैतवाद से संबंधित उपनिषद का एक महत्वपूर्ण वचन है जिसका उल्लेख भी महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में किया है। यह वचन है : 'अजमेकां लोहितशुक्लकृष्णां बहवीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अंजो हयेको जुष्माणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।। इसमें कहा गया है कि प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज हैं अर्थात् इनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी जन्म लेते अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण है। इन तीनों का कारण कोई नहीं है। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फंसता (जन्म-मरण व पाप-पुण्य चक्र में) है और उसमें परमात्मा न फंसता और न उस का भोग करता है।

महर्षि दयानन्द जी के विचारों के ईश्वर, जीव व प्रकृति के स्वरूप व इनके लक्षणों का संक्षेप में चित्रण करते हैं। ईश्वर कि जिस के ब्रह्म परमात्मादि नाम हैं जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिस के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं। जो सर्वज्ञ निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्ता, धर्ता, हर्ता, सब जीवों को उनके कर्मानुसार सत्य व न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है वही परमेश्वर है। जीवात्मा व जीव वह है जिसमें इच्छा, द्वेष, सुख, दुख और ज्ञानादि गुण व जो अल्पज्ञ नित्य है। यह जीव ईश्वर से सर्वथा पृथक सत्ता है। इस प्रकार से ईश्वर व जीव दो सत्तायें सिद्ध होती हैं। ईश्वर व जीव से भिन्न प्रकृति तत्व के लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए महर्षि दयानन्द ने सांख्यसूत्र के वचन 'सत्त्वरजस्तमसां पंचतन्मात्रेभ्यः प्रकृति प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारत् पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पंचतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरूष इति पंचविंशतिर्गणः।। को उद्धत किया है। इसका भाषार्थ है : (सत्व) शुद्ध (रजः)मध्य (तमः) जाड्ये अर्थात् जड़ता तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है उस का नाम प्रकृति है। उस से महत्तत्व बुद्धि, उससे अहंकार, उस से पांच तन्मात्रा सूक्ष्म भूत और दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन, पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पांच भूत ये चौबीस और पच्चीसवां पुरूष अर्थात् जीव और परमेश्वर है। इन में से प्रकृति अविकारिणी और महत्तत्व अहंकार तथा पांच सूक्ष्म भूत प्रकृति का कार्य और इन्द्रियां मन तथा स्थूलभूतों का कारण हैं। पुरूष अर्थात् ईश्वर व जीव न किसी प्रकृति का उपादान कारण है और न ये दोनो चेतन पदार्थ किसी का कार्य हैं।

महर्षि के अनन्य भक्त रक्तसाक्षी पं. लेखराम जी १७ मई १८८१ को अजमेर में महर्षि दयानन्द जी से मिले थे। महर्षि दयानन्द जी ने उनको उपदेश किया और उनसे कहा कि उनके मन में और जितने संदेह हो उन सब का निवारण कर लो। पं. लेखराम जी ने तब उनसे १० प्रश्न किये थे जिनमें से एक था कि जीव ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद प्रमाण बतलाइये? इसका महर्षि दयानन्द ने उत्तर दिया कि यजुर्वेद का ४०वां अध्याय

शेष पेज ७ पर देखें....

भ्रष्टाचार- कारण एवं निवारण

सूर्य देव चौधरी

हमारे जीवन में धन का महत्व निर्विवाद है। हालांकि धन सब कुछ नहीं है लेकिन धन बहुत कुछ है। धन के बिना जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति संभव नहीं है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं- भोजन, वस्त्र एवं आवास के लिए धन आवश्यक है। संतानों की शिक्षा देनी हो तो धन चाहिए। देश के विकास एवं वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए भी धन जरूरी है। ज्ञान का प्रचार करना हो तो धन चाहिए। कृषि, व्यापार, उद्योग के कार्य भी बिना धन के संभव नहीं है। यहां तक कि सेवा कार्य के लिए भी धन की जरूरत पड़ती है। तात्पर्य यह कि धन के बिना जीवन का कोई भी व्यवहार नहीं हो सकता है। अतः मानव जीवन की आवश्यकताओं एवं दायित्वों की पूर्ति के लिए धन एक अनिवार्य तत्व है। इसलिए भारतीय संस्कृति में फलचतुष्टय में एक फल अर्थ यानी धन है। धन की अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए ऋषियों ने यह कामना की - वयम् स्याम पतयो रयीणाम् अर्थात् हम बहुत से धनों के स्वामी बनें। परम पिता परमात्मा ने ही अपनी अमर वाणी वेद की ऋचाओं के माध्यम से यह भी कहा कि 'शतहस्त समाहर'' सहस्रहस्त संकिर अर्थात् सैकड़ों हाथों से, अनेक साधनों से धन कमाओ और हजार हाथों से उसका सदुपयोग करो।

आज के भौतिकवादी युग में धन का महत्व पहले से अधिक बढ़ गया है। पहले धन जीवन की आवश्यकताओं दायित्वों की पूर्ति का साधन मात्र था, लेकिन आज धन जीवन का साध्य बन गया है। फलतः आज का मनुष्य बिना श्रम अथवा कम श्रम एवं अल्प समय में अपने साध्य को प्राप्त करके अधिक धनवान बनना चाहता है। धन कमाने के लिए वह हर उचित अनुचित हथकंडे अपनाता है क्योंकि वह धन कमाने की अंधी दौड़ में शामिल होकर अपने सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्वों के कर्तव्यों को भूल जाता है। यहीं से भ्रष्टाचार का जन्म होता है। भ्रष्टाचार के दैत्य ने आज विकराल रूप ले लिया है। फलतः देश के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इससे देश की अर्थव्यवस्था चौपट हो रही है, देश के विकास के लिए विदेशों से जो सहायता या ऋण की राशि आती है वह घोटाला एवं हवाला के माध्यम से विदेशी बैंको में पहुँच जाती है। विदेशी एजेंसियां इसी धन को भारत को कर्ज के रूप में पुनः देती हैं और यह चक्र जारी रहता है, जिससे देश पर अनावश्यक कर्ज का बोझ बढ़ता जा रहा है।

देश में उद्योगधंधों के लिए जो धन आवंटित होता है, उसका अधिकांश भाग भ्रष्टाचार के दैत्यों द्वारा निगल लिया जाता है। फलतः देश के उद्योग धंधे चौपट एवं बन्द हो रहे हैं। इसके दुष्प्रभाव का शिकार मध्यम एवं निम्न आय वर्ग के कर्मचारी ही होते हैं। आज मानवीय संवेदना इतनी मर चुकी है कि बाढ़, सूखा, भूकम्प, तूफान आदि प्राकृतिक विपदाओं से ग्रस्त मनुष्यों की सहायता के लिए प्रदत्त धन भी भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाता है। कोई भी क्षेत्र आज भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं है। भ्रष्टाचार के विषाणु देश में ऊपर से नीचे सर्वत्र फैल चुके हैं। क्या यह आश्चर्य का विषय नहीं है कि जो विद्यालय विद्या के पवित्र मंदिर हुआ करते थे आज वे भ्रष्टाचार में नंबर १ बन गए हैं? जब मनुष्य की निर्माणशाला ही भ्रष्टाचार के सबसे बड़े अड्डे बन गए हैं तो फिर अन्यत्र सदाचार की आशा कैसे की जा सकती है। जब बीज ही बबूल का हो तो उस पर आम कैसे फल सकता है? कुल मिलाकर आज देश में भ्रष्टाचार की तस्वीर बड़ी भयावह है।

प्राचीन ऋषियों को अवश्य ही यह ज्ञात होगा कि धन की अधिकता मनुष्य को विलासी एवं धन का लोभ मनुष्य को भ्रष्ट बनाता है। इसलिए जीवन मूल्यों को निर्धारित करते समय ऋषियों ने सादा जीवन उच्च विचार का सिद्धान्त स्थापित किया। जब मनुष्य का जीवन सादा होगा तो उसकी आवश्यकताएं कम होगी और जब आवश्यकताएं कम होंगी तो उसकी पूर्ति के लिए कम धन की आवश्यकता पड़ेगी। इसलिए सादा जीवन जीने वाला व्यक्ति अधिक धन का लोभ नहीं करेगा और आवश्यकताएं कम होने से वह दूसरों के हित की बात भी सोचेगा। दूसरी ओर यदि हमारी आवश्यकताएं बढ़ती है तो उसकी पूर्ति के लिए अधिक धन की आवश्यकता होगी। जब मनुष्य की अधिक धन की आवश्यकता सत्य मार्ग से पूरी नहीं होती तो वह भ्रष्ट मार्ग से धन कमाने लगता है, ताकि उसकी बढ़ी हुई आवश्यकताएं पूरी हो। इसतरह भ्रष्टाचार बढ़ने लगता है। अतः भ्रष्ट आचरण पर अंकुश लगाने के लिए ऋषियों ने सादा जीवन उच्च विचार को जीवन मूल्य के दो रूप में निर्धारित किया ताकि हम अपनी आवश्यकताएं कम रखें जो अल्प धन में पूरी हों और दूसरों को भी जीवन यापन की साधन मिल सकें।

नदी की वेगवती जलधारा को जब उसके दो तट नियंत्रित करते हैं तो वह लोक के लिए कल्याणकारिणी होती है लेकिन जब उसके तट टूट जाते हैं तो वहीं जलधारा मृत्यु का, विनाश का ताडंव मचाने लगती है। इसी तरह अर्थ एवं काम की वेगवती धारा को नियंत्रित करके उसे लाभकारी बनाने के लिए ऋषियों ने फलचतुष्टय में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का क्रम रखा जिसमें धर्म एवं मोक्ष अर्थ एवं काम को नियंत्रित करने वाले दो तट हैं, किनारे हैं। जब तक मानव जीवन में धर्म का आचरण रहता है और मोक्ष की अभिलाषा बनी रहती है तब तक अर्थ एवं काम नियंत्रित होकर मानव के लिए कल्याणकारी बने रहते हैं, लेकिन जब धर्म का आचरण छूट जाता है और मोक्ष की अभिलाषा छोड़ दी जाती है यानी जब धर्म एवं मोक्ष रूपी तट टूट जाते हैं तब अर्थ एवं काम की वेगवती धारा मानव समाज में विनाश का तांडव शुरू कर देती है। अर्थ रिश्वतखोरी, गबन, घोटाला आदि के रूप में और काम यौन अपराधों के रूप में भ्रष्टाचार का तांडव मचाते हैं। आज के भौतिकवादी युग में मोक्ष को काल्पनिक मानकर भुला दिया गया है, तो धर्म एवं मोक्ष रूपी दोनों तट टूट चुके हैं। फलतः अर्थ एवं काम की धारा अनियंत्रित हो गई है, जिससे समाज में भ्रष्टाचार का तांडव चल रहा है। महर्षि दयानन्द ने कहा था कि जो धर्म के द्वारा अर्जित किया जाता है वह अर्थ है और जो अधर्म के द्वारा अर्जित किया जाता है वह अनर्थ है। महर्षि का यह कथन सत्य है क्योंकि सत्य के द्वारा धर्म के द्वारा, श्रम के द्वारा अर्जित धन ही अच्छे कार्यो में लगता है। जो धन अधर्म के द्वारा भ्रष्ट आचरण के द्वारा अर्जित किया जाता है वह अधर्म युक्त बुरे कार्यो में लगकर अनर्थ का कारण बनता है। इसलिये फलचतुष्टय में धर्म के बाद अर्थ का क्रम रखा गया है ताकि धर्म पूर्वक अर्थ का अर्जन किया जाय, लेकिन आज तो धर्म को गौण कर दिया गया है, केवल अर्थ की प्रधानता रह गई है। धर्महीन अर्थोपार्जन की प्रवृति ही भ्रष्टाचार का कारण है। धर्मपूर्वक अर्थ अर्जित करने की प्रवृत्ति से ही भ्रष्टाचार पर अंकुश लग सकता है। भ्रष्टाचार को समाप्त या नियंत्रित करने के लिए धर्म एवं मोक्ष रूपी तट को पुनः कायम करना पड़ेगा।

मानव जीवन में दो चीजें महत्वपूर्ण हैं- एक भौतिकवाद एवं दूसरा अध्यात्मबाद। दोनों एक दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि एक दूसरे के पूरक है। भौतिकवाद मानव जीवन को सुखी एवं सम्पन्न बनाने के लिए साधन का निर्माण करता है तो अध्यात्मवाद उसके दुरूपयोग को रोककर उसे सुख शान्ति एवं विकास के मार्ग पर ले जाता है। इसलिए मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए ये दोनों आवश्यक है। भौतिकवाद धन के प्रति आकर्षण को बढ़ाकर मनुष्य को लोभ एवं भ्रष्टाचार की ओर ढकेलता है, जबकि अध्यात्मवाद धन के प्रति आकर्षण को नियंत्रित कर भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाता है। आज का मनुष्य भौतिकवादी हो गया है और अध्यात्म को भूलता जा रहा है, जिससे भ्रष्टाचार एवं दुराचार बढ़ता जा रहा है। भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने के लिए मनुष्य का अध्यात्मवादी बनना जरूरी है। अध्यात्मवादी मनुष्य धन एवं मानव मूल्यों दोनों के महत्व को सम्यकरूप से समझता है। इसलिए वह मानव मूल्यों का ध्यान रखते हुए धर्मपूर्वक धन का अर्जन करता है। लेकिन प्रश्न यह है कि मनुष्य में अध्यात्मवाद की, मानव मूल्यों की स्थापना कैसे हो?

इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि यह दो स्तरों पर संभव है। पहला परिवार के स्तर पर एवं दूसरा शिक्षण संस्थान के स्तर पर। कहा जाता है कि परिवार मानव जीवन की प्रथम पाठशाला है। परिवार से जो शिक्षा, जो संस्कार मिलते हैं वह जीवन भर रक्षा कवच बनकर मनुष्य को बाहर के भ्रष्ट वातावरण से बचाते हैं। मोहन दास को परिवार में अपने माता पिता से मिले संस्कार ने ही विदेशों के प्रदूषित वातावरण से उनकी रक्षा जिसके कारण वे आजीवन सत्य, अहिंसा, मानवता आदि मानकों-मूल्यों के प्रति समर्पित रहे और महात्मा की पदवी प्राप्त कर महात्मा गांधी के नाम से विश्व-विख्यात हुए। अतः यदि माता-पिता अपने बच्चों को घर में धनार्जन की शिक्षा के साथ-साथ आध्यात्मिक मानव मूल्यों की भी शिक्षा दे तो धीरे धीरे भ्रष्टाचार पर अंकुश लग सकता है। दूसरे शिक्षण संस्थानों के माध्यम से देश की भावी पीढ़ी में आध्यात्मिक अथवा मानव मूल्यों की शिक्षा मिलनी चाहिए। भारत में पहले ऐसा होता था। लेकिन देश का दुर्भाग्य है आज जब शिक्षण संस्थानों में आध्यात्मिक, जीवन मूल्यों की शिक्षा देने की बात उठती है तो कथित धर्मनिरपेक्ष जमात इसका विरोध यह कहकर करने लगती है कि इससे साम्प्रदायिकता बढेगी, जबकि सत्य यह है कि आध्यात्मिक शिक्षा से भ्रष्टाचार के साथ साम्प्रदायिकता भी घटेगी। शिक्षण संस्थानों में आध्यात्मिक शिक्षा का विरोध वे ही करते है जो चाहते हैं कि उन्हें अधर्मयुक्त भ्रष्ट आचरण करने की छूट मिलती रहे। भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षण संस्थानों को व्यवसाय के मार्ग से हटाकर विद्या का मंदिर बनाया जाय और वहां धनार्जन की शिक्षा के साथ-साथ आध्यात्मिक जीवन मूल्यों की शिक्षा दी जाये, जिसका महत्व धनार्जन की शिक्षा के समतुल्य हो। इसके अतिरिक्त शासन स्तर पर भी भ्रष्टाचार से निपटा जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि पद एवं प्रतिष्ठा को नजरअंदाज करते हुए भ्रष्टाचार में लिप्त सभी व्यक्तियों को समान रूप से दंडित किया जाय। यह तभी संभव है जब भ्रष्टाचार के मामले में त्वरित निर्णय किए जाये, लेकिन इसमें दिक्कत यह है कि सत्ताशीर्ष पर बैठे हुए दोषियों को बचाने की कवायद शुरू हो जाती है। फिर भी प्रयास किया जा सकता है।

सारांश रूप में भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए आवश्यक है कि हम सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धान्त पर चलें, सच्चे अर्थो में आध्यात्मिक बनें, धर्म एवं मोक्ष के द्वारा अर्थ को नियंत्रित करें तथा अपने आपको मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पित करें। हम वेदों के उस आदेश को शिरोधार्य करें जिसमें कहा गया है- 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्वित् धनम्' अर्थात् प्राप्त धन का उपभोग त्यागभाव से अनासक्त होकर करें, मोहासक्त होकर नहीं, दूसरे के धन का लालच न करें क्योंकि यह धन ईश्वर का है, सुख का है अर्थात् सुख का साधन है जीवन का साध्य नहीं। इसलिए धन तो कमाएं लेकिन सुपथ पर चलकर - 'अग्ने नय सुपथा राये'।

झारखण्ड राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
रांची, मो.-९४७०५५७३२२

पृष्ठ.२ का शेष भाग...

अर्थात् संतोष से ही अलौकिक सुख मिलता है तृष्णाक्षय के संबंध में व्यास जी ने एक श्लोक उपस्थित किया है-

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिवं महत्सुखम्। तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्।। अर्थात् संसार के दिव्य सुख भी तृष्णाक्षय रूपी सुख के १/१६ भाग के बराबर भी नहीं है। यदि समाज इस श्लोक को ह्रदयंगम करता है तो उसके बहुत से कष्ट मिट जायेंगे। तृष्णा के वशीभूत होकर ही हम वस्तुओं का अनाप-शनाप अनावश्यक संग्रह किये जाते हैं। चेन्नई की मुख्यमंत्री जयललिता का उदाहरण सुप्रसिद्ध है कि उसके पास इतनी साड़ियां निकली कि वर्ष में प्रत्येक को एक बार भी धारण करने का अवसर नहीं आता। अन्य संपत्ति का विवरण तो अलग है, जो सर्वविदित है। अकेली जयललिता ही नहीं राजनैतिक लोग इसी धर्म का निर्वाह कर रहे हैं। राजनीति में तो दोनों हाथों से सम्पत्ति बटोरने की पूरी छूट है ही। आज सामान्य जनता भी इसी दौड़ में शामिल हो रही है। परिणाम क्या हैं? दुख, छीनाझपटी, बेईमानी, रिश्वत इत्यादि। यदि इन लोगों ने पतंजलि के नियम 'अपरिग्रह' का पाठ पढ़ा होता तो यह दुर्दशा न होती।

आज सर्वत्र आतंकवाद, हत्याएं, मारकाट का साम्राज्य है। इसमें अन्य कारणों के सिवाय एक कारण यह भी है कि अंडे तथा मांस भक्षण के द्वारा हिंसावृत्ति हमारे रूधिर में प्रवेश कर गयी है। अपने सुख के लिए प्राणी के प्राण लेने में आज का मानव संकोच नहीं करता। इस वृत्ति पर पतंजलि के 'अहिंसा' नाम यम के द्वारा ही नियंत्रण लगाया जा सकता है। दण्ड के भय या अन्य कारण से हिंसावृत्ति दूर होने वाली नहीं। भारत आज अपनी जनसंख्या वृद्धि से भयभीत है। इसलिए परिवार नियोजन पर पता नहीं राष्ट्र का कितना धन बर्बाद किया जा रहा है। परिवार वृद्धि के मूल में जो काम वासना है उस पर नियंत्रण लगाने का कोई यत्न नहीं किया जा रहा है, उल्टे विषय भोग को बढ़ावा देने वाले नाना साधन सरकार तथा डाक्टरो की ओर से सुझाये जा रहे हैं। यदि पतंजलि के 'ब्रह्मचर्य' नामक यम का इतनी तत्परता से प्रचार प्रसार किया गया होता तो राष्ट्र तथा राष्ट्रवासियों का चरित्र कुछ और ही होता। तब अपहरण नहीं होते, बलात्कार नहीं होते। ब्रह्मचर्य ही सबको नियंत्रित कर देता। ऐसा करे कौन? वेद में कहा है- ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्र विरक्षति। अर्थात् ब्रह्मचर्य तथा तप के द्वारा ही राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। आज तो बिल क्लिंटन जैसे राष्ट्रपति विद्यमान है, जिनकी दुश्चरिता समस्त संसार में सुप्रसिद्ध होने पर भी उनके गौरव में कमी नहीं आयी। भारत में भी यह विचार तीव्रता से घर करता जा रहा है कि चरित्र का राजनीति से कोई संबंध नहीं। पतंजलि ब्रह्मचर्य के द्वारा समाज के दुराचारी व्यक्तियों का ही नियंत्रित कर रहे हैं। योगी तो ब्रह्मचारी होता ही है। इतना ही नहीं व्यास जी तो यह भी लिखते हैं कि उपस्थेन्द्रिय के समान अन्य लोलुप इन्द्रियों को भी विषयों से रोकने का नाम ब्रह्मचर्य है। यदि ब्रह्मचर्य की इस परिधि को अपना लिया जाय तो व्यक्ति का जीवन पूर्णतः नियंत्रित हो जाए।

पतंजलि ने अस्तेय तथा सत्य का भी विधान किया है। आज समाज ने दोनों को ही परे फेंक दिया। अस्तेय की परिधि विशाल है। किसी के द्रव्य को उसकी अनुमति के बिना लेना स्तेय है। अपनी ड्यूटी का पूरे समय ठीक से पालन न करना स्तेय है। पदार्थो में मिलावट करना स्तेय है। मासिक वेतन के अतिरिक्त दो नंबर की कमाई स्तेय है, झूठे बिल बनाना स्तेय है। यह जानते हुए भी पूरा समाज इस स्तेय में लिप्त है। इसके लिए असत्य का आश्रय लेता है। यदि पतंजलि के अस्तेय तथा सत्य का पाठ समाज एवं राष्ट्र ने पढ़ लिया होता तो उसका नैतिक चरित्र पतन की ओर न जाकर उन्नति के शिखर पर पहुँच जाता।

यहां संक्षेप में यही प्रतिपादन किया गया है कि मेडिटेशन के नाम पर आंख मींचकर बैठ जाने का तथा योगासन मात्र कर लेने का नाम योग नहीं हैं, अपितु यह तो समग्र जीवन दर्शन है तथा क्रियात्मक रूप में जीवन को शुद्धता की ओर ले जाकर दुखरहित करने की वैज्ञानिक पद्धति है। पतंजलि के अनुसार योगाभ्यासी व्यक्ति ईश्वर विश्वासी होगा। वह संतोषी, तपस्वी, अहिंसक, सत्यवादी, स्वाध्यायशील तथा ब्रह्मचारी होगा। वह इन्द्रियलोलुप नहीं होगा। जब ऐसे व्यक्ति होंगे तो समाज सुधरेगा या नहीं? वर्तमान समस्याएं समाप्त होंगी या नहीं? इसलिए योग को हमें क्रियात्मक रूप में जीवन में अपना लेना चाहिए। तभी समाज का परिशोधन होगा। तभी वर्तमान समस्याओं का समाधान होगा। भोगवादी तथा स्वेच्छाचारी व्यक्ति का योग में प्रवेश नहीं है।

आर्य समाज रुदौली फैजाबाद

आर्य समाज रुदौली फैजाबाद का श्रावणी उपाक्रम दिनांक २६.८.१५ को धूम-धाम से मनाया गया। जिसमें बासुदेव मुनी जी, एम.एल.ए. राम चन्द्र यादव चेयरमैन रुदौली तथा अशोक कसौधन सुभाष चन्द्र व सतीन्द्र शास्त्री ने अपने सम्बोधन में आर्य समाज के प्रचार प्रसार पर जोर दिया।

-मंत्री, आर्य समाज रुदौली
फैजाबाद

पृष्ठ.५ का शेष भाग...

सारा जीव ब्रह्म का भेद बतलाता है। व्याप्य-व्यापक सिद्धान्त पर पं. लेखराम जी ने ऋषि से कहा कि जयपुर में एक बंगाली सज्जन उन्हें मिले और प्रश्न किया कि आकाश भी व्यापक है और ब्रह्म भी, दो व्यापक किस प्रकार इकठ्ठे रह सकते हैं? पंडित जी इसका उत्तर नहीं दे सके थे। उन्होंने यही प्रश्न स्वामी जी से पूछा? उन्होंने एक पत्थर उठाकर कहा कि इसमें अग्नि व्यापक है या नहीं? पंडित जी ने कहा कि व्यापक है। फिर कहा कि मिट्टी? पंडित जी ने कहा कि व्यापक है फिर पूछा कि जल? कहा कि व्यापक है। फिर पूछा कि आकाश और वायु? पंडित जी ने कहा कि व्यापक है। फिर स्वामी जी ने पूछा कि परमात्मा? पंडित जी ने कहा कि वह भी व्यापक है। तब स्वामी जी ने कहा कि देखो कितनी चीजें है परंतु सभी इसमें व्यापक हैं। वास्तव में बात यही है कि जो जिससे सूक्ष्म होती है वह उसमें व्यापक हो सकती है। ब्रह्म चूंकि सबसे अति सूक्ष्म है इसलिए वह सर्वव्यापक है। पंडित जी ने लिखा है कि इससे उनकी जिज्ञासा की शांति हो गई।

हम आशा करते हैं कि पाठक त्रैतवाद से परिचित होने के साथ इसी मत को स्वीकार करेंगे क्योंकि यही मत वेद सम्मत होने के साथ तर्क व युक्तियों से भी सिद्ध है एवं सर्वथा सत्य है। सत्य एक ही होता है परस्पर भिन्न भिन्न मत सत्य नहीं हो सकते।

१६६, चुक्खूवाला-२
देहरादून-२४८००१

आर्य समाज रानीमण्डी, इलाहाबाद का वेद प्रचार सप्ताह सम्पन्न

आर्य समाज रानी मण्डी अतरसुइया स्त्री आर्य समाज रानी मण्डी, अतरसुइया एवं गोपीनाथ गिरजा नन्दिनी आदर्श कन्या इण्टर कालेज, इलाहाबाद के तत्वावधान में दिनांक ३१.८.१५ से ५.९.२०१५ तक वेद प्रचार सप्ताह धूम-धाम से मनाया गया। जिसमें यज्ञ, भजन, उपदेश के कार्यक्रम सम्पन्न हुये।

आर्य समाज हसनगंज पार, डालीगंज लखनऊका शताब्दी समारोह

दिनांक १८, १९, २० सितम्बर, २०१५ को आर्य समाज हसनगंज पार, डालीगंज, लखनऊ का शताब्दी समारोह रामाधीन सिंह कालेज, निकट आई.टी. चौराहा, बाबूगंज, लखनऊ में आयोजित किया जा रहा है। समारोह में देश के ख्यातिलब्ध वैदिक विद्वान, आर्य नेतागण, वेद विदुषियां तथा भजनोपदेशक पधार रहे हैं। दिनांक १८ से २० सितम्बर, २०१५ तक प्रातः ८:०० बजे से ११:०० बजे तक सायं ६:३० से १०:०० बजे तक यज्ञ भजन एवं प्रवचन के कार्यक्रम होंगे। कृपया अधिक से अधिक संख्या में पधार कर कार्यक्रम को सफल बना कर हमें अनुग्रहीत करें।

-सेवकराम अधिष्ठाता

निर्वाचन

आर्य समाज रानी मण्डी, अतरसुइया, इलाहाबाद

प्रधान	::	श्री मंगलदास चौरसिया
मंत्री	::	डॉ. बी.पी. सागर
कोषाध्यक्ष	::	श्री ओम प्रकाश पोपली

आर्य समाज शास्त्री नगर, डी-ब्लाक मेरठ

प्रधान	::	श्री सत्य पाल आर्य
मंत्री	::	श्री मनवीर सिंह
कोषाध्यक्ष	::	श्री बी. बाबू

वैदिक साहित्य प्रचारार्थ कम मूल्य पर प्राप्त करें।

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के घासीराम प्रकाशन विभाग से वेद प्रचारार्थ वैदिक साहित्य उपलब्ध।

१. कालजयी संत महर्षि दयानन्द सरस्वती
प्रकाशक-महात्मा वेदपाल आर्य
२. सामवेदीय शिक्षा और उपासना विज्ञान
लेखक-देवेन्द्रपाल वर्मा।
३. ऋग्वेदीय पदार्थ विज्ञान - लेखक-देवेन्द्रपाल वर्मा
४. विषमताओं में अविचलित-महर्षि दयानन्द सरस्वती,
लेखक-चन्द्रवीर चौहान
४. देव यज्ञ (दैनिक अग्निहोत्र विधि)-देवेन्द्रपाल वर्मा

इसके साथ ही चारों वेदों का सेट, कक्षा १ से १२ तक नैतिक शिक्षा की पुस्तकें अन्य वैदिक साहित्य आर्डर मिलने पर प्रचारार्थ मूल्य पर प्राप्त कर सकेंगे।

स्वामी धर्मेश्वरानन्द सरस्वती
सभा मंत्री
आर्य प्रतिनिधि सभा,
५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ (उ.प्र.)

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२४४१/५७ - आर्यमित्र १५ सितम्बर, २०१५ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४-२०१३-१५

एक प्रति ₹ २.००

आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर., ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०६४१२६७८५७१, मंत्री-०६८३७४०२१६२, ५३२७४६६००
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,

.....

....

.....

आर्य समाज गोविन्दनगर कानपुर के चित्र

आर्य समाज शामली के चित्र

आर्य समाज औरैया के चित्र

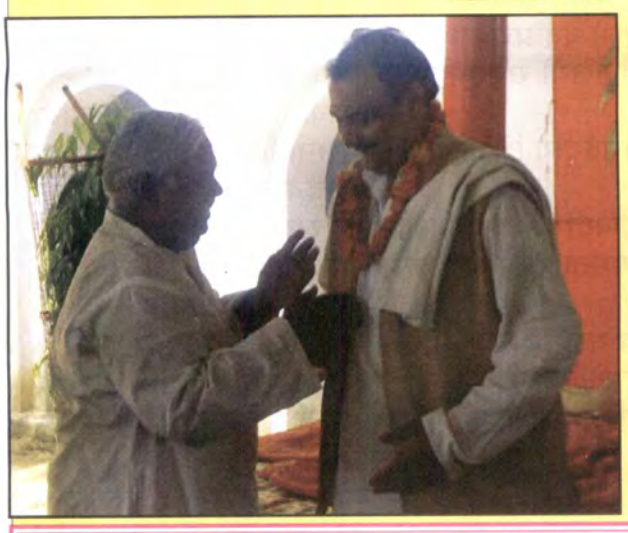

स्वामी–आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक–आचार्य वेदव्रत अवस्थी, मुद्रक प्रकाशक–श्री सियाराम वर्मा, भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस, ५–मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित

लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है–सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।